Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, Impact Factor : 2.0778, Volume 07, No. 01, January, 2017, pp. 279-287

वैदिक वाङ्मय और सार्वभौमिक चेतना : एक अवलोकन

डॉ० कनक रानी*

सारांश

वैदिक साहित्य में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''[1] सदृश सूत्र यह स्पष्ट करते हैं कि समग्र मानव जाति एक इकाई है, मानवहित चिन्तन में देशकाल की परिधि को स्वीकार नही किया जा सकता। वैदिक संहिताओं में मानवीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में संकीर्णता का स्थान नहीं है। उनका लक्ष्य मानव जीवन और विश्वजीवन की रचना की व्याख्या करना है। वेदों में समग्र विश्व को एक राष्ट्र के रूप में चित्रित किया गया है,''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की जड़े यहीं निहित है। वर्तमान में आधुनिक वैश्वीकरण की व्यापक पृष्ठभूमि वैदिक संहिताओं में यत्र–तत्र देखी जा सकती है, जहां समस्त मानवता एक परिवार है, सहअस्तित्व वैदिक आदर्श है– ''यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्''।

उद्देश्य

वेदों में मानवमात्र के लिए कल्याणकारी उपदेश निहित हैं, जो देश–काल की सीमाओं में प्रभावित नहीं हैं। यही कारण है कि वैदिक संहितायें वर्तमान में भी मानव कल्याण का पथ प्रशस्त करने में सर्वथा सक्षम हैं।

वेद ज्ञान के अक्षय भण्डार हैं और यह ज्ञानराशि मानव–सूत्र के कल्याणार्थ है। यह किसी काल और सीमा में आबद्ध नहीं है, समस्त मानव जाति के प्रत्येक पक्ष का सफलतापूर्वक मार्गदर्शन करती है, लाभान्वित कराती है। सार्वदेशिक तथा सार्वदिक् होने के कारण पूरे विश्व के द्वारा वरणीय है वैदिक संहिताओं जो अनन्त युगों की निधि है और जिनकी शिक्षा युग–युगान्तरों के लिए है। सनातन् स्वयंभू ने अपने ही शरीर से विश्व की रचना की, चातुर्वर्ण्य रचना के संदर्भ में ऋग्वेद का मंत्र उल्लेखनीय है कि–

ब्राह्मणोअस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।[2]

वस्तुतः विश्व को एक विराट् पुरूष के रूप में कल्पित किया गया है और समाज को चार विभागों में विभाजित कर उन्हें उस विराट् पुरूष के अवयव मुख, भुजा, जंधा एवं पैर के रूप में कल्पित किया गया। आर्यो के समाज की रचना का चार वर्णो के क्रमिक विकास का संकेत ऋग्वेद के अन्तर्गत इसी मंत्र में प्राप्त होता है। मनुस्मृतिकार ने इसी तथ्य को पुष्ट किया है।

सोभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।[3]

महर्षि मनु का कथन है कि इस सामाजिक रचना के मूल में लोकमंगल का तत्व निहित है। लोकविवृद्धयर्थ अर्थात् समाज के सर्वतोमुखी विकास तथा कल्याण कामना के उद्देश्य से मानव समाज के चार स्तम्भों के रूप में चार वर्णो की रचना की गई–

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश।

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरूपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरर्वयत्।।[4]

सुस्पष्ट है कि वैदिक संहिताओं का लक्ष्य लोकमंगल की साधना है, उन्नत समाज का विनिर्माण करना है। वे सभी मानव मूल्य, नैतिक आदर्श और चारित्रिक गुण जो समग्र मानव जाति के लिए उपयोगी है, उनको क्रियान्वित करने के लिए संदेश दिया गया। मानव समाज के सुख–शांति एवं समृद्धि के आधारभूत तत्वों का विधान किया गया, जिन कार्यो से जनहित होता है, उनके लिए मानव जीवन को सुशिक्षित किया गया। वैदिक संस्कृति–आर्य संस्कृति विश्वजनीन है, महर्षि मनु ने इस संदर्भ में बताया है कि–

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।[5]

भूतल के सभी मनुष्यों को स्वाचार और सदाचार की शिक्षा गृहण करना चाहिए। यह समुद्घोष लोककल्याण की दृष्टि से ही किया गया। लोकमंगल के इसी भाव ने वैदिक वाङ्मय को प्राणिमात्र के कल्याण चिन्तन का सर्वश्रेष्ठ उपदेष्टा बताया है। वेदों में समष्टि चेतना और समदर्शन के द्वारा लोकहित की अवधारणा मुखर हुई है। विश्वकल्याण की इस उत्कृष्ट अभिलाषा ने वैदिक साहित्य को सार्वभौमिक बना दिया है।

यजुर्वेद में प्राणिमात्र को मैत्री–भावना का सन्देश दिया गया कि–

दृते दृंह मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।।[6]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेदभाष्य में उक्त मन्त्र का अर्थ किया कि हे अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वान् ! जिससे सब प्राणी मित्र की दृष्टि से मुझको सम्यक् देखें, मै भी मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को सम्यक् देखूं, इस प्रकार हम लोग परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें– इस विषय में हमको दृढ़ कीजिए।

इस मंत्र में निष्कपट मित्रता के संबंध का निर्वाह करने के लिए प्रेरित किया गया। वैदिक सन्देश विश्वजनीन है। यहां विश्वमैत्री की उदात्त भावना मुखरित हुई है। दूसरों के साथ आत्मवत् आचरण की अपेक्षा की जाती है, श्रीमद्भगवत्गीता में प्रकारान्तर से इसी भाव का अवलोकन होता है।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति" ।।

वेदानुमोदित स्मृतिग्रन्थ भी इसी मत की पुष्टि करते हैं कि जो हम सत्यं के लिए स्वीकार नहीं करते उसे दूसरों के प्रति प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

अतोयदात्मनोपथ्यं परस्य न समाचरेत्।[7]

मानवता का यह बहुत बड़ा आधार तत्व है कि मनुष्य दूसरों के साथ वही व्यवहार करे जो वह दूसरों से अपने प्रति चाहता है। "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" अर्थात् अपने प्रतिकूल जो आचरण है वह दूसरों के प्रति आचरण में नही लाना चाहिए। दूसरों के प्रति अपने जैसा व्यवहार भावात्मक श्रेष्ठता का परिचायक है। वेदों में मनुष्यों को एक ही परिवार का सदस्य मानकर उनको घृणा और वैमनस्य से पृथक् कर मानसिक स्वस्थता का उपदेश दिया गया है। इस मनः स्थिति में मानव कामादि विकृतियों से ऊपर उठकर, संकीर्णता से हटकर विचार और व्यवहार करता है–

यस्तु सर्वाणिभूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।।

इस प्रकार मैत्री भावना से मनुष्य का दृष्टिकोण बदल जाता है, स्वार्थभाव समाप्त हो जाता है, सर्वभूतों एवं स्वयं में अन्तर नहीं रखता है, संशयहीन होकर पृथिवी के समस्त प्राणियों को समभाव से देखता है, क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठकर मानवोचित उदात्त विचारों से भर जाता है। मानव मात्र के कल्याण के लिए मैत्री भावना की अपरिहार्यता सभी के द्वारा अवगत है। निश्चय ही, इस भावना के माध्यम से वैदिक शिक्षाओं ने लोक मंगल व आत्ममंगल का प्रथ प्रशस्त किया।

मानसिक और वैचारिक एकता के सन्दर्भ में अधोलिखित मंत्र में निहित संदेश दृष्टव्य है–

समानीवः आकूतिः समाना ह्रदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[8]

अर्थात् तुम्हारे संकल्प समान हों, तुम्हारे ह्रदय समान हों, तुम्हारे मन समान हो, जिससे तुम लोग परस्पर मिल कर रहो। मानसिक एकता का यह उपदेश किसी देश–विदेश के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथिवीवासियों के लिए है। एकता का यह सन्देश संकीर्णता, जातीयता, प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर विश्वशांति का अग्रदूत कहा जा सकता है। मनों में दूरी बढ़ाने वाले कारण अस्तित्वहीन हो जाते हैं, समानता के इस भाव में संसार का हित निहित है। एकता से मानव समाज संगठित होता है। संग**ठन** के क्या आधारभूत तत्व हैं ? इस तथ्य पर वेदों में ध्यान केन्द्रित किया गया कि संग**ठन** के लिए सांमनस्य की अनिवार्यता अपेक्षित है, एकचित्तता अथवा सहचित्तता संगठन का मूल तत्व है, अर्थवेद में कहा गया है कि –

सं वो मनांसि संव्रता समाकृतोर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि।।[9]

अर्थात् तुम्हारे मनों को कर्मो का तथा संकल्पों को समान भाव से युक्त करते हैं। सांमनस्य से समाज को एकता के सूत्र बांधना सम्भव है। ''अभी ये विव्रतास्थन'' शब्दों के द्वारा प्रतिकूल आचरण वाले, अलगाववादी, पृथकता वादी लोगों के विचारों को परिष्कृत करने के लिए बल दिया गया ताकि वे मानव मात्र के कल्याण में साधक बनें, बाधक नहीं। वैचारिक एकता से मानव समाज में सुस्थिरता आती है, प्रगति होती है तथा जन–जीवन में सुख–शांति होती है, इसलिए वेदों में संदेश दिया गया कि–

समानो मन्त्रः समितिः समानी,
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्यमभिमन्त्रये वः,
समानेन वो हविषा जुहोमि।।[10]

अर्थात् तुम सबके विचार समान हों, समिति समान हों, मन समान हों और चित्त समान लक्ष्य से युक्त हों। तुम्हें समान विचार वाला बनाता हूँ। चित्त में विरोध का अभाव हो, निर्णय में सद्भाव हो, परस्पर अविरोधी बनकर लोकमांगल्य को लक्ष्य बनाएं। वैदिक संहिताओं में मानव के विचारों को समान बनाकर विरोध को समाप्त कर नैतिक रूप से अनुशासित कर सार्वभौमिक, सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक व्यवस्था दी गई। वैदिक शिक्षायें अपरिवर्तनशील अर्थात् शाश्वत है, जो किसी भी देश अथवा काल में औचित्यपूर्ण हैं, आदर्शोन्मुख है तथा सर्वाङ्गीण विकास की साधक हैं। वैदिक संहिताओं में सहगमनीयता की प्रेरणा दी गई। जो सार्वभौमिक चेतना का मञ्जुलतम निदर्शन है। इस आदर्श की प्रतिष्ठाकर सांसारिक हित का मार्ग दिखाया गया। ऋग्वेद में कहा गया है कि–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्व संजानाना उपासते।।[11]

मिलकर चलो, परस्पर मिलकर बात करो। तुम्हारे चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस तरह पूर्व विद्वज्जन, मनीषीगण सेवनीय प्रभु को जानते हुए उपासना करते आए हैं, उसी तरह तुम भी किया करो। इस मन्त्र में परस्पर मिलकर चलने, बोलने और मिलकर ज्ञान प्राप्त करने की बात कही गई है। यहाँ सार्वदिक् चेतना की दृष्टि से मानव मात्र को मिलजुलकर व्यवहार करने की शिक्षा दी गई है। सहगमनीयता के साथ सहवदनीयता के संदेश की भी मानव–कल्याण के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई पड़ती है। अथर्ववेद् में सहभाव की शिक्षा दी गई–

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै बल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि।।[12]

अर्थात् बड़ों का मान रखने वाले, उत्तम चित्र वाले, समृद्धि करते हुए और एक धुरा होकर चलते हुए तुम लोग अलग–अलग न होवो और एक दूसरे से मृदु बोलते हुए आओ। तुमको साथ–साथ गति वाले और एक मन वाले मैं करता हूँ। इस मन्त्र में मिलकर चलने तथ मृदु बोलने की प्रेरणा दी गई। मृदु वाणी की अतीव महत्ता है साथ–साथ चलने के लिए सहवदनीयता के बिना सहगमनीयता दुष्कर कार्य है। संगठन के लिए भी मृदु वाणी का महत्वपूर्ण योगदान होता है, यदि वाणी अनियंत्रित, कटु अथवा प्रतिकूल होती है तो मानव–कल्याण का लक्ष्य बाधित हो सकता है। यही कारण है कि महर्षि मनु ने भी वाणी की मधुरता पर बल दिया। वस्तुतः मृदु सम्भाषण करने वाला व्यक्ति वाचिक हिंसा से भी स्वयं की रक्षा कर लेता है। कटु शब्दावली का न प्रयोग कर तथा मधुर शब्दों का आश्रय लेकर मानव परिवेश में अनुकूल प्रभाव डालने में सफल हो जाता है। मृदु वाणी से सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगत होता है, अतएव् उन्होंने सुन्दर व मधुर वाणी के प्रयोग का उपदेश दिया–

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोअनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।।[13]

बाचिक अहिंसा मानवमात्र के लिए कल्याणकारी है अतएव् इस पक्ष पर पर्याप्त महत्व दिया गया। वेद में अन्यत्र कहा गया कि मेरी जिह्वा में मधुरता व सरसता बनी रहे। यह मधुरता मेरी वाणी तक ही सीमित न रहे अपितु मेरे कर्म, चित्त एवं बुद्धि में भी माधुर्य बना रहे–

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।[14]

मृदुवाणी का महत्व यत्र–तत्र प्रतिपादित है, भगवान कृष्ण ने भी श्रीमद्भगवद्गीता में वाङ्मय तप का उल्लेख किया है–

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।[15]

मृदु वाणी का प्रयोग मानवहित में है तथा कटु वाणी अथवा असंयमित वाणी अकल्याणकारी है अतः जीवन में माधुर्य के संचार के लिए शिक्षा दी गई–

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसदृशः।।[16]

प्रियवचन सभी को आनन्दित करते हैं इसीलिए प्रिय बोलने के लिए प्रेरित किया गया– :सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'' मानव मात्र की सन्तुष्टि के परिप्रेक्ष्य में वाणी के माधुर्य का उपदेश वेदों की सार्वभौमिक चेतना के पक्ष को उजागर करता है। पृथिवी पर उत्पन्न सभी की सन्तुष्टि के लिए–

''प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं, वचने का दरिद्रता।।

वस्तुतः मीठी वाणी से समस्त भूमण्डलवासियों को एकता के सूत्र में पिराने का कार्य वैदिक मंत्रों में यत्र–तत्र–सर्वत्र देखा जा सकता है। उद्विग्न करने वाली बातों को यथासम्भव नहीं बोलना चाहिए, मनुस्मृतिकार ने मानवों के बीच में दूरी बढ़ाने वाली वचनों की कटुता से बचने के निर्देश किया–

"ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत्।[17]

अधिक बोलना, मिथ्या बोलना, कटु बोलना आदि अनेक वाणीगत दोष हैं, जिनके कारण वैमनस्य का जन्म होता है, सांमनस्य का ह्रास होता है, अतः वैदिक संहिताओं में वाणी के संयम का, वाणी की मृदुता का, वाणी के सुप्रभाव का निरूपण किया गया और सोच–समझकर बोलने का संदेश दिया गया।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तुयत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।[18]

जैसे चलनी में छानकर सत्तू को साफ किया जाता है। उसी प्रकार धीर गम्भीर विद्वज्जन मन से पवित्र करके एवं विचार करके वाणी का प्रयोग करते हैं। यहाँ समस्त मानवता को वाणी की कटुता से मुक्त रखने का वैदिक प्रयास किया गया जिसे भूमण्डलीकरण का महत्वपूर्ण आधार कहा जा सकता है। वैदिक संहिताओं में मानव मात्र के लिए पक्षपात विहीनता का आदर्श उल्लिखित है। सभी मनुष्य एक समान हैं, ज्येष्ठ–कनिष्ठ सदृश कोई विसंगति नहीं है, वर्गवाद जैसी कोई अव्यवस्था नहीं है, छोटा–बड़ा जैसी कोई अनौचित्य पूर्ण बात नहीं। वैदिक मंत्र आदर्शोन्मुख है, मानवता हेतु समानता के पक्षधर हैं, विश्व में शांति और समृद्धि के विधायक हैं। ऋग्वेद में समाजिक एकता को दृष्टिगत करते हुए पक्षपात से रहित होने के लिए संदेश दिया है यथा–

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौमभाय।[19]

पृथिवीवासियों ! न तुमसें कोई बड़ा है और न छोटा। तुम सब भाई–भाई हो। सौभाग्य की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ो। इस मंत्र सभी पृथिवीवासियों के मध्य समानता की बात कही जा रही है और प्रगति हेतु अग्रसर होने के लिए प्रेरणा दी जा रही है। छोटा–बड़ा यह भावना मन को दुःखित करती है, दूरियों को बढ़ाने वाली होती है, साथ ही कटुता को जन्म देने वाली होती है। मंत्र में निहित अतीव कल्याणकारी भाव है जहां सभी समान हों वहाँ कैसी दूरी और कैसी द्वेषभाव ? समानता की भावना सकारात्मकता को बढ़ाती है और सामाजिक विद्वेष को समाप्त करने में सहायक होती है। निरन्तर आगे–बढ़ने लिए सबके पास समान अधिकार है, समान अवसर हैं। जीवन के सुचारू संचालन के लिए गतिशील रहना तथा आगे बढ़ना अपेक्षित है–चरैवेति–चरैवेति। वेदों में भेदभाव को मानव कल्याण के मार्ग में बाधक स्वीकार किया गया। भेदभाव स्वस्थ मानसिकता का परिचायक नहीं, प्रगति के लिए घातक है। इस दूषित मनोवृत्ति से मुक्त रहने की शिक्षा दी गई–

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभयो, नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम, या जयायसः शंसमा वृक्षि देवाः।।[20]

अर्थात् बड़ों को नमस्कार है, छोटो को नमस्कार है, युवकों को नमस्कार है, वृद्धों को नमस्कार है। यदि सामर्थ्य होगी तो देवों के लिए यज्ञ करेंगें देखो बड़ो की प्रशंसा की स्तुति को मत नष्ट करें। यहाँ छोटे–बड़े सभी के प्रति मैत्रीभाव की प्रतिष्ठापना की गई, सभी को नमस्करणीय बताकर सौहार्द्रता, समानता, सहानुभूति और सामंजस्य विश्वहितार्थ ग्राह्य निर्देशित किया गया। उन्नति को लक्ष्य बनाते हुए साम्य भाव की प्रतिष्ठापना वैदिक संहिताओं की दूरदर्शिता तथा सार्वभौमिक चेतना का अवगत कराती है।

भरण पोषण में सहभाव

एक मूलभूत आधार तत्व है जो मनुष्यों के मध्य आत्मीयता का संचार करता है। साथ–साथ भोजन करना व जलपान करना मानव मात्र में प्रेम भावना को उत्पन्न करता है। वैदिक मंत्र में भरण–पोषण के क्षेत्र में भी मानवों को समानता का भाव उपदिष्ट है–

समानी प्रपासह वोअत्नभागः समाने योस्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोअग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।[21]

इस मंत्र का अभिप्राय है कि तुम्हारे जलपीने का स्थान एक हो, धरती से प्राप्त अन्न का समान भाव से उपभोग करो। मै तुम सबको समानता के जुए में बांधता हूँ, तुम सब मिलकर अग्नि की उपासना करो और रथ ही नाभि में अरे की भांति मिलकर रहो।

उक्त मंत्र में मानवमात्र को समानता का पाठ पढ़ाया गया कि सबको समानभाव से अन्न व जल का उपयोग करना है। सबको स्वार्थभाव से ऊपर उठकर मानवता के हित में विचार करना है। वेद का यह संदेश ह्रदय की संकीर्णता को समाप्त कर नैतिकता की शिक्षा देता है। यजुर्वेद में भी त्यागपूर्वक उपभोग करने की बात कही गयी–

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन मुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[22]

भरणपोषण में सहभाव से ''लोभ'' पर विजय मिलती है और त्याग पूर्वक उपभोग का लक्ष्य भी। यहाँ किसी स्थान विशेष के लोगों की बात नही की गई, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के समानरूप से भरणपोषण की बात की गई ।

वैदिक जीवन दर्शन में अग्नि का विशेष माहात्म्य है जैसे प्रकाश प्रदान करना, ऊपर को उठाना, उष्णता प्रदान करना, सूक्ष्मतम रूप में दूर तक प्रसार करना। अग्नि के इन्ही गुणों से प्रेरणा प्राप्त कर मानव कल्याणोन्मुख हो सकता है–तमसो मा ज्योतिर्गमय। यह भी कहा गया कि जिस तरह रथ की नाभि में अरे जुड़े रहते है वैसे ही तुम सब मिलकर रहो। रथ की नाभि में अरे समान भाव से जुड़े रहते हैं, यह मानव समाज रथ ही तरह है और इस मानव समुदाय में तुम अरे में सदृश समान भाव से जुड़े रहो। यहाँ मानवमात्र के लिए अन्न तथा जल ग्रहण करने के संदर्भ में समानता का पाठ सार्वभौमिकता चेतना का उत्कृष्ट उद्धरण है।

वैदिक संहिताओं में **विद्वेष विहीनता** की शिक्षा देते हुए मानवों के बीच प्रेमभावना को पल्लवन किया गया है। यहाँ ह्रदय की निर्मलता है, प्रेम की प्रसन्नता है, सह्रदयताः, सहचित्रता के साथ–साथ विद्वेष विहीनता का उदात्तभाव है। द्वेषयुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देकर वैदिक संहिताओं ने समस्त पृथिवीवासियों के प्रति कल्याण का भाव अभिव्यक्त किया है–

आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतन[23]
ज्याके परिणो नमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोअरातीरप द्वेषांस्या कृधि।।[24]

द्वेष एक मनोविकार है जो मानसिक निर्मलता को हानि पहुँचाता है महर्षि पतञ्जलि ने द्वेष के बारे में कहा है–दुःखानुशयी द्वेषः। महर्षि पतंजजलि ने द्वेष पर विजय पाना आध्यात्मिक उपलब्धि है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्ताव'' की बात कही है। अथर्ववेद के अधोलिखित मंत्र में विश्वशांति की स्थापना के निमित्त उत्कृष्ट उपदेश दिया गया है।

सह्रदयं सांमनस्यमविद्वेष कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाहन्या।।[25]

अर्थात् मै तुम्हे सह्रदय, सांमनस्य और द्वेषमुक्त बनाता हूँ, तुम परस्पर प्रीतिपूर्वक रहो जैसे न मारने योग्य गाय अपने नवप्रसूत बछड़े को प्यार करती है। यहाँ सदस्य का अभिप्राय है– समान ह्रदय

वाला, सहानुभूति, समवेदना से युक्त। सांमनस्य से मानसिक एकता का भाव सुस्पष्ट है अर्थात मनों में प्रतिकूलता न हो, विपरीतता न हो, सभी एकता रूपी सूत्र में बंधे हों। वस्तुतः सहृदयता व सांमनस्य पूर्णरूपेण तभी संभव है जब मनुष्य के अंदर द्वेष का सर्वथा अभाव हो। द्वेष मानसिक व आध्यात्मिक जगत् में तो क्षति पहुँचाता ही है, मनुष्यों के बीच कटुता व दूरी बढ़ाने का भी कार्य करता है। यही कारण है कि वेदों में द्वेष विरहित जीवन जीने की उदात्त कामना भी गई। गाय और बछड़े के निःस्वार्थ, निष्कपट, प्रेम उद्धरण कर मानव मात्र को सहजता व सरलता से निःस्वार्थ प्रेममय सम्बंधो की नैतिक शिक्षा दी गई। श्री वल्लभदेव ने सुभाषितावलि में कहा है कि 'अबन्धुष्वपि बन्धुत्वम् स्नेहात् समुपजायते' अर्थात स्नेह से अबंधुओं में भी बन्धुत्व उत्पन्न हो जाता है।

वेदों में मानव मात्र के कल्याण को लक्ष्य बनाते हुए **दुर्गुणों एवं दुष्कर्मो से निवृत्ति** की भी प्रेरणा दी गई। पापभावना अर्थात् विहित कर्मो के त्याग से पतन होता है – अतः निषिद्ध कर्मो से सचेत होने का उपदेश मिलता है–

मा पापत्वाय नो नरा इन्द्राग्नी माशिशस्तये।
मा नो रीरधतम् निदे।।[26]

उक्त मन्त्र में मानव ने दोषमुक्त रहने की प्रार्थना की महाभारत में कहा भी गया है कि विहित कर्म का त्याग ही पाप है–

अनुष्ठान निषिद्धस्य त्यागो विहित कर्मणः। नृणाम् जनयतः पापम् क्लेश शोक भयप्रदम्।।''

पाप चरित्र के अवनयन का कारण है, इस संदर्भ में याज्ञवल्म्य स्मृतिकार का कथन है कि'' विहितस्याननुष्ठानात् निन्दितस्य च सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति।।''

वेद विहित कर्मो का परित्याग करने व निन्दित का सेवन करने से मानव पतन को प्राप्त करता है अतः मानव–मात्र को सर्वतोभावेन निर्मल रखने की दृष्टि से पाप विरत रहने की प्रेरणा दी गई।

कुर्यात्छुभानि कर्माणि निवर्तेत् पाप कर्मणः।[27]

पाप कर्मो से मानव को बलपूर्वक हटाने की चेष्टा की गई–

परोअपेहि मनस्पाप किम शंससि
परेहि न त्वा कामय।।[28]

अर्थात् ओ मन के पाप चल दूर हट, क्यों निन्दित सलाह दे रहा है। चल दूर हट यहाँ से , मै तुझे नहीं चाहता। इस प्रकार दुगुर्णो एवं दुष्कर्मो से सजग रहने के लिए प्रेरित किया गया। मन को स्वस्थ वृत्तियां कल्याण की साधक होती है तथा कामादि् विकृतियों मानव हित को आघात पहुँचाती है, अतएव् ईश्वर से प्रार्थना की गई कि

मा न इन्द्राभ्यां 3 दिशाः सूरो अक्तुष्वायमत्
त्वा युजा वनेम तत्।।[29]

अर्थात् मनुष्य का मन इतना सबल हो कि काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और ईर्ष्या विकार, अज्ञानकाल में भी किसी भी दिशा में आक्रमण न कर पाएं यदि कभी आक्रमण करें भी तो परमात्मा की कृपा से विनष्ट हो जाए। ऐसे अनेकानेक वैदिक सूक्त व मन्त्र यत्र–तत्र दिखाई देते हैं जो दूर्गणों से दूर रहने की प्रेरणा देकर समस्त मानव जाति को कल्याण का पथ दिखलाते हैं। वैदिक संहिताओं में सद्गुणों की ओर प्रवृत्त कर मानव समुदाय को जीवन के लक्ष्य का सन्मार्ग दिखाई गयी–

विश्वदानीं सुमनसः स्याम।
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।।[30]

उक्त मंत्र में सुमनस शब्द का अर्थ है कि सुन्दर मन/सुन्दर मन में उठने वाले भाव ही मानव–कल्याण की आधार शिला रखते हैं जैसा कि कहा गया है कि –

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मण करोति, यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते–शतपथ ब्राहमण

मनुष्य जो मन में सोचता है वही वाणी से कहता है जो वाणी से कहता है वही कर्म से करता है और जो कर्म से करता है उसी का फल प्राप्त करता है। निश्चय ही मन की वृत्तियां ही मूल में हैं, अतएव् मन को कल्याणकारी बनाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई–

तन्में मनः शिवसंकल्पम्स्तुं।[31]

युजर्वेद में सदाचरण की ओर प्रवृत्त कर मानवमात्र के कल्याण हेतु सर्वत्र शिक्षा दी गई।

परि माग्ने दुश्चरिताद् बा धस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृतां अनु।।[32]

हे परमेश्वर! आप मुझे दुष्टाचरण से पृथक करके उत्तम धर्माचरण युक्त व्यवहार में संलग्न कीजिए। अन्यत्र भी कल्याण कर भावों व कर्मो से युक्त होने कामना की गई–

भद्रं कर्णेभिः ऋणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्य शेमहि देवहितं यदायुः।।[33]

अर्थात् हम कानों से कल्याणकारी वचनों को सुने और आँखों से कल्याणकारी दृश्यों को देखें। इन्द्रियग्राम को संयमित कर सद्गुणों की ओर प्रवृत्त कर मानव मात्र का कल्याण चिन्तन वैदिक संहिताओं की अनुपम विश्ष्टिता है। ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र में ''मनुर्भव'' अर्थात् मनुष्य बन यह प्रेरणा समस्त पृथिवी पर निवास करने वाली मानवजाति के मनुष्यत्व की रक्षा करने का अतीव सुन्दर प्रयास है–

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।।[34]

हे मनुष्य! जीवन के ताने वाने को तनते बुनते हुए तू आकाश के सूर्य का अनुसरण कर। बुद्धि द्वारा बनाए गए प्रकाशवाले रास्तों की तू रक्षा कर। उपासकों के कर्मो को यथोचित गति से आगे बढ़ा मनुष्य बन। दिव्य गुण कर्मवाली सन्तान को उत्पन्न कर। सत्य ही, बड़ी ही उदात्त प्रेरणा दी गई ''मनुर्भव'' के माध्यम से । अन्यत्र भी कहा गया है कि–

उद्यानं ते पुरूष नावयानम्।[35]

हे मनुष्य तुझे जीवन में ऊँचा उठना है, नीचे नही गिरना है। सार स्वरूप यह सुस्पष्ट होता है कि वैदिक संहिताओं में निहित सुन्दर उपदेशों व निर्देशो में सार्वभौमिक चेतना की सहज अभिव्यक्ति है।

निष्कर्ष

वैदिक संहितायें अक्षय ज्ञान की निधि हैं, जहाँ लोकमांगल्य की भावना सर्वत्र दृष्टिगत होती है। विश्व कल्याण की इसी भावना ने वेदों को सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक उद्घोषित किया है। यह शोध पत्र मानव मात्र के जीवन को वैदिक संहिताओं के उपदेशों से लाभान्वित कर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करने में सहायक है।

सन्दर्भ सूची

1. ऋगवेद/9/63/5
2. ऋग्वेद/पुरूषसूक्तम्/10/90
3. मनु/1/2
4. मनु/1

5. मनुस्मृतिः/2
6. यजुर्वेद 36/18
7. याज्ञवल्क्य स्मृति/3/65
8. ऋग्वेद/10/191/4
9. अर्थर्ववेद/6/94/1
10. ऋग्वेद /10/19/1/3
11. ऋग्वेद/10/191/2
12. अथर्ववेद्/3/30/5
13. मनुस्मृति/2/159
14. अथर्ववेद/1/34/2
15. भगवद्गीता/17/15
16. अथर्ववेद/1/34/3
17. मनुस्मृति/2/161
18. ऋग्वेद/10/71/2
19. (ऋग्वेद/5/60/5)
20. (ऋग्वेद/1/27/13)
21. अर्थववेद/3/30/6
22. यजुर्वेद।।
23. ऋग्वेद/10/63/12
24. अथर्ववेद/1/2/2
25. अथर्ववेद/3/30/1
26. सामवेद/918
27. महाभारत/शांतिपर्व/35/42
28. अर्थववेद/6/45/1
29. सामवेद/128
30. ऋग्वेद/6/5/2/5
31. यजुर्वेद/34/4
32. यजुर्वेद/4/28
33. यजुर्वेद/25/21
34. ऋग्वेद/10/53/6
35. अथर्ववेद/8/1/6

□□□